पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
शिकोहाबाद, ता. १२-४-१९८९
श्री समयसार, गाथा २७८-२७९, प्रवचन नंबर P १८

श्री समयसार जी परमामगम शास्त्र है। जो आज से दो हजार वर्ष पहले समर्थ आचार्य दिगम्बर मुनियों द्वारा, उनका लिखा हुआ है, कुन्दकुन्द आचार्य भगवान का। उसके ऊपर टीका एक हजार साल बाद में हुई, संस्कृत टीका। आत्मख्याति नाम की टीका। आत्मा की प्रसिद्धि कैसे हो - उसका इसमें वर्णन है। उसकी २७८, २७९ गाथा पूरी हो गई, टीका।

उसका भावार्थ। मूल विषय ये है कि, क्या विषय है कि जब आत्मा अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है, तब राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, दर्शन मिथ्यात्व, ज्ञान मिथ्यात्व, चारित्र मिथ्यात्व - सब दोष की उत्पत्ति होती है, अपने स्वभाव को भूल जाता है। स्वभाव से च्युत हो जाता है, परिणति अपने स्वभाव से छूट जाती है। दूर हो जाती है। तो दोष की उत्पत्ति का मूल कारण अपने स्वभाव से च्युत होना है। मूल पाठ में ये है।

तो जब दोष उत्पन्न होता है रागादि, तो रागादि में परद्रव्य निमित्त कहा जाता है। मगर निमित्त कब कहा जावे? कि दोष उत्पन्न हो तो। दोष कैसे उत्पन्न होता है? कि अपने स्वभाव से च्युत हो तो। ज्ञाता को कर्ता मानना, वो दोष है। सबका आत्मा ज्ञाता ही है। कर्ता होता नहीं है, हो सकता भी नहीं है। कर्ताबुद्धि होती है, कर्ताबुद्धि होने पर भी, आत्मा अपने अकर्ता स्वभाव को तीन काल में छोड़ता नहीं है। मूल भाव को छोड़ता नहीं है, आत्मा अकर्ता है। मानता है कि मैं कर्ता हूँ, परपदार्थ का कर्ता हूँ, दूसरे को सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, दूसरों को मैं बोध कराकर उसको मैं आत्मदर्शन कराता हूँ। मिथ्यात्व है। ऐसी मान्यता ठीक नहीं है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणाम का तीन काल में कर्ता होता नहीं है। ज्ञाता होने पर भी कर्ता मानना, वो स्वभाव से च्युत हो गया। अकर्ता को कर्ता माना, ज्ञाता को कर्ता माना, वो स्वभाव से च्युत हो गया। मिथ्यादर्शन की पर्याय प्रगट हो गई। और श्रद्धा की च्युति है और ज्ञान की भी एक च्युति होती है। जो ज्ञान प्रत्येक जीव में प्रत्येक समय पर उपयोग लक्षण प्रगट होता है, ज्ञान प्रगट होता है। एक ज्ञान प्रगट है, दूसरा ज्ञान प्रगट होता है। एक ज्ञान प्रगट है, इसका अर्थ- द्रव्य स्वभाव ज्ञानमयी आत्मा प्रगट है। उसको प्रगट नहीं करना है, वो तो प्रगट है और है। और उसको प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान प्रगट होता है। जो है, उसको प्रसिद्ध करनेवाला एक ज्ञान समय-समय पर नया, नया, नया, नया, नया, नया, वो ही का वो ही, वो ही का वो ही, वो ही का वो ही। ज्ञान तो वो ही का वो ही है। उपयोग लक्षण है, वो प्रगट होता है। वो जो प्रगट पर्याय में भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। समय-समय पर सबको। ऐसे नहीं मानकर मैं ज्ञायक को नहीं जानता हूँ, तो अज्ञान हो गया।

अज्ञान, दोष उत्पत्ति का कारण क्या? कि अपने को भूल गया कि जाननहार जानने में आता है, वो भूल गया। वो दोष हुआ। दोष की उत्पत्ति का उद्भव स्थान वहाँ है। समझे? जैसे गंगा नदी का उद्भव

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

स्थान कहाँ है? हिमालय। है कि नहीं? ऐसे दोष की उत्पत्ति का मूल कारण, मूल कारण, उद्भव स्थान कहाँ है? कि ज्ञान में ज्ञायक जानने में आने पर भी, (ऐसा मानता है कि) वो तो भगवान ज्ञायक तो अरिहंत को जानने में आवे, सिध्द को जानने में आवे, मुनिराज को जानने में आवे, सम्यग्दृष्टि को जानने में आवे। हमको तो जानने में नहीं आता है क्योंकि हम तो अज्ञानी हैं। हम तो (अज्ञानी हैं)। नहीं है। तू ज्ञानवान है, अज्ञानी नहीं। अज्ञानी (कहने की) भाषा फेर दे। मैं सम्यग्ज्ञानी हूँ, ऐसा मत बोल। मैं मिथ्याज्ञानी हूँ, ऐसा भी मत बोल। मैं तो ज्ञानमय आत्मा हूँ। मैं तो ज्ञानवान हूँ। मैं तो ज्ञानी हूँ- ऐसा नहीं। मैं तो ज्ञानवान हूँ। समझे?आहा! ज्ञानवान तो हैं न सब? ज्ञानवान हैं। ज्ञान स्वरूप हैं, ज्ञानमयी आत्मा।

उसके ज्ञान की पर्याय में अपना आत्मा समय-समय पर, जानने में आने पर भी, उसका वो निषेध करता है। मेरा आत्मा मेरे को जानने में नहीं आता है। तो क्या आता है? कि रागादि जानने में आता है, देहादि जानने में आता है, मंदिर में जाऊँ तो भगवान की प्रतिमा पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जानने में आती है। इसका अर्थ कि मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा जानने में नहीं आता है, वो ज्ञान की च्युति हो गई। पहले श्रद्धा की च्युति कर्ताबुद्धि में और ज्ञान की च्युति - मैं जानने में नहीं आता हूँ। वो ज्ञान की च्युति, अज्ञान हो गया। अज्ञान की उत्पत्ति वहाँ से हुई।

जानने में आने पर भी नकार करता है। निज परमात्मा जानने में आ रहा है, सबको, सदाकाल, अभी भी, निरंतर, तो भी, (मानता है कि) वो तो भगवान का दर्शन तो ज्ञानी को होता है, हमको नहीं। तेरे को भगवान का दर्शन हो रहा है, तू निषेध करता है। वो ज्ञान की च्युति हो गई, अज्ञान हो गया। ज्ञान का अज्ञान, ज्ञान का अज्ञान। था तो ज्ञान, उत्पन्न तो था ज्ञान। ज्ञान यानि सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं, ज्ञान उत्पन्न था। मिथ्याज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है और सम्यक्ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है। ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का सदुपयोग करे तो सम्यग्ज्ञान। यानि मेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है, तो वो ज्ञान था, उसका नाम सम्यक्ज्ञान हो गया। अतीन्द्रियज्ञान हो गया। सदुपयोग किया ज्ञान का। और वो ही ज्ञान का दुरूपयोग करता है कि मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा जानने में आता नहीं है, उसका नाम अज्ञान है।

तो अज्ञान जब उत्पन्न होता है, इन्द्रियज्ञान उत्पन्न होता है, तो पर को जानता है, स्व को जानता नहीं है। तो कहा जाता है कि पर को जानने से अध्यवसान होता है, मिथ्याज्ञान होता है। मगर उद्भव स्थान इधर से है। अपने को आप भूल के हैरान हो गया। कर्म के उदय से कोई दुःखी नहीं है। असाता के उदय से कोई भी दुःखी होता नहीं है। अपने अज्ञान से दुःखी होता है और आत्मज्ञान से सुखी होता है। आहाहा! ऐसी बात है। स्वभाव से च्युत होना दोष है। वो दो गाथा में आ गया।

अभी भावार्थ। भावार्थ में दृष्टांत में लिखते हैं कि '**स्फटिक मणि अपने आप तो केवल एकाकार शुद्ध ही है**;...' अनेकाकार नहीं है। स्फटिक मणि का जो स्वभाव है। स्वभाव है, एकाकार शुद्ध है, अनेकाकार उसमें नहीं है। शुद्ध ही है, शुद्ध ही है। शुद्ध ही है। सम्यक् एकांत कर दिया। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध - ऐसा नहीं है। क्योंकि अशुद्धता धर्म स्फटिक मणि में है ही नहीं। और उसमें स्थापना और बाद में कथंचित् कहना वो अज्ञान है। समजमे आया? स्थापने के बाद कथंचित् कहना वो तो अज्ञान हो गया। है ही नहीं और स्थापा। स्थापने के बाद। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध स्थापने के बाद बोलता है। आहाहा! मगर स्थापना ही नहीं। खुद देख ले कि कथंचित् नहीं है, सर्वथा शुद्ध है।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

(मुमुक्षुः स्थापता है, पर है नहीं।) स्थापता है तो विस्थापित करना पड़ता है। स्थापना ही नहीं। मैं तो सर्वथा शुद्ध हूँ। आहाहा! स्फटिक मणि तो सर्वथा शुद्ध ही है। जल निर्मल ही है, जल निर्मल ही है। और मैल को अंदर स्थापता है। मैल को। पर्याय के अंदर स्वभाव में डालता है, तो कथंचित् निर्मल है और कथंचित् मलिन कहा जाता है। मगर वो स्थापना बंद कर दे तो निर्मल ही है। आहा! सर्वथा निर्मल। कथंचित् तो स्थापता है, इसके लिए। स्थापना ही बंद कर दो न। स्थापकर विस्थापित करना- मिट्टी लगाना पहले और बाद में स्नान करना। मिट्टी लगाना बन्द कर दो। मिट्टी लगावे तो स्नान करने का प्रश्न है। मैल धोने का। और मिट्टी लगाई ही नहीं तो? नहाने की जरूरत नहीं है। इसलिए राग को स्थापता है, तो राग को निकालने का उपदेश आता है कि तेरे में राग है नहीं। स्थापनेवाले के लिये उपदेश है। जिसने स्थापा ही नहीं, उसके लिये उपदेश है नहीं।

'**स्फटिक मणि स्वयं तो केवल एकाकार शुद्ध ही है**;...' आहाहा! थोड़ा अशुद्ध हो गया और बाद में शुद्ध हुआ, ऐसा नहीं होता। स्वभाव त्रिकाल शुद्ध रहता है। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध- ऐसा स्वभाव में लागू पड़ता नहीं है। सर्वथा शुद्ध है, सर्वथा शुद्ध है। '**वह परिणमन स्वभाववाला होने पर**...' वह यानि स्फटिकमणि, '**परिणमन स्वभाववाला होने पर**...' आहाहा! परिणमन स्वभाव तो है स्फटिक मणि में। स्फटिक मणि शुद्ध है। उसका परिणमन होने पर भी वो शुद्ध ही रहता है। अशुद्ध होता नहीं है। ध्रुव तो शुद्ध है, मगर उत्पाद-व्यय भी शुद्ध है। उत्पाद-व्यय होने से स्फटिक मणि में, रताश-लाल आ गया ऐसा है नहीं। दो बात किया।

अभी आगे, '**अकेला अपने आप ललाई-आदि रूप नहीं परिणमता**...' यानि अकेला-अकेला स्फटिक मणि पड़ा हो, तो लालरूप में परिणमता नहीं है। वो लाल की उपाधि का कारण त्रिकाल स्फटिकमणि की शुद्धता भी नहीं, उसका परिणमन भी नहीं है, परद्रव्य है निमित्त। निमित्त कारण परद्रव्य है। वो निमित्त कारण परद्रव्य कब कहलाता है? कि स्वभाव से च्युत हो तब। नंबर वन और नंबर टू। अलौकिक समयसार।

'**किन्तु लाल आदि परद्रव्य के निमित्त से (स्वयं ललाई-आदिरूप परिणमते ऐसे परद्रव्य के निमित्त से) ललाई-आदिरूप परिणमता है**।...' आहाहा! उसमें स्वभाव से च्युत लिया था, मूल में। टीका में आया था, '**ऐसे परद्रव्य के द्वारा ही, शुद्ध स्वभाव से च्युत होता हुआ ही, रागादिरूप परिणमित किया जाता है**।' स्वभाव से च्युत शब्द वहाँ आया है। इधर इसमें स्वभाव से च्युत शब्द नहीं लिया। तो समझ लेना। मूल टीका में है। भावार्थ में छूट गया। मूल चीज़ है वो। एक, '**परद्रव्य के निमित्त से**...' आहाहा! '**ललाई-आदि रूप परिणमता है**।' वो दृष्टांत पूरा हो गया, स्फटिक मणि का दृष्टांत पूरा हुआ।

अभी सिद्धांत बताते हैं आचार्य भगवान। '**इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो शुद्ध ही है**;...' अकर्ता ही है, ज्ञायक ही है, ज्ञाता ही है, सर्वथा। आत्मा अकर्ता ऐसा ज्ञायक है, तो सर्वथा ज्ञायक है। कथंचित् कर्ता और कथंचित् ज्ञाता - ऐसा नहीं है। आहाहा! वो तो कर्ता का जब मिलान करो तो कथंचित् कर्ता-अकर्ता की बात आती है। आहाहा! प्रमाण उत्पन्न करो तो नय निकालना चाहिए। प्रमाण स्थापो ही नहीं तो? व्यवहार का निषेध करने की जरूरत नहीं है। जैसा हूँ वैसा अनादि अनंत हूँ। (मुमुक्षुः मूल बात है। आज तो मूल में भी मूल बात है।) सच्ची बात है।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

जल, अपनी योग्यता से, मिट्टी के संग और अपनी पर्याय की योग्यता से मलिन हुआ। द्रष्टान्त समझना। जो पर्याय में मलिनता आ गई, तो तो अपने को फिटकरी डालने की, निर्मली औषधि डालने की जरूरत पड़ती है, मैल निकालने के लिये। मगर जो जल स्वच्छ है, उसमें कोई फिटकरी डालता है? इसमें जिसकी पर्याय द्रस्टि हो गई है, उसके लिए भेदज्ञान है। बाकी भेदज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मूल में भूल। कहा न मिट्टी लगाना, बाद में नहाना। मिट्टी लगाना ही नहीं। आहाहा! ऐसा मैं तो त्रिकाल शुद्ध चिदानंद आत्मा हूँ। आहाहा!

'**इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो**...' अपने आप तो '**शुद्ध ही है।**' कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध नहीं है। आहाहा! कोई अलौकिक जैन दर्शन है। नहीं तो लिखना पड़े कि शुद्ध है, शुद्ध है? शुद्ध 'भी' नहीं, 'भी' नहीं, 'ही' है। 'भी' कहो तो कथंचित् अशुद्धता आ जायेगी। मगर 'भी' में अशुद्धता आती है, 'ही' में नहीं आती। गुंजाईश ही नहीं, चान्स ही नहीं है। आत्मा शुद्ध भी है- ऐसा नहीं है। शुद्ध ही है। 'ही' में और 'भी' में बहुत फेर है। 'ही' त्रिकाल स्वभाव का प्रतिपादन करता है और 'भी' में दूसरे प्रकार का ज्ञान कराते हैं। निषेध करने के लिये। वो भी निषेध करने के लिए। पकड़ लिया उसने, बच्चा पकड़ता है। रवींद्र बाबू! वो बच्चा छोटा पकड़ता है। आहाहा! तो बड़ों को तो ख्याल आना चाहिए। छोटा बड़ा कोई नहीं है। भगवान आत्मा हैं सब। आहाहा! कोई मनुष्य नहीं, कोई तिर्यंच नहीं, कोई स्त्री नहीं, कोई पुरुष नहीं, कोई बालक नहीं, कोई वृद्ध नहीं। सब आत्मा हैं।

'**इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो शुद्ध ही है**;...' आहाहा! अब शुद्ध है या शुद्ध करना है? तेरे को शुद्ध की खबर ही नहीं। तूने अशुद्ध ही आत्मा मान लिया। शुद्ध करना है तेरे को? आहाहा! आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध को शुद्ध करना - भाषा खोटी है। और आत्मा अशुद्ध है तो शुद्ध करना, वो भी भाषा खोटी है। क्योंकि आत्मा अशुद्ध हुआ ही नहीं।

'**इसीप्रकार आत्मा**...' आहाहा! आत्मा सबका शुद्ध ही है, अशुद्ध हुआ ही नहीं है। पवित्र परमात्मा है, परिपूर्ण है, नित्य निरावरण है। उसको मिथ्यात्व का आवरण, कर्म का आवरण, देह का आवरण हुआ ही नहीं है। आवरण से रहित नित्य निरावरण अंदर प्रतिमा चैतन्य मूर्ति विराजमान जलहल ज्योति। आहाहा! '**स्वयं तो शुद्ध ही है**; **वह परिणमन स्वभाववाला होने पर भी**...' कूटस्थ होने पर भी परिणमन भी, अपरिणामी होने पर भी परिणमता है। परिणमन होने पर भी वो अशुद्ध नहीं होता है। अशुद्ध नहीं होता है। परिणमन होता है तो अशुद्धता आ गई, ऐसा है नहीं। शुद्ध स्वभाव, अशुद्धता का कारण नहीं, उसका उत्पाद-व्यय अशुद्धता का कारण नहीं है।

अभी पर्याय में द्रव्य शुद्ध होने पर भी, पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी? उसका बंध का कारण बताते हैं। '**अकेला अपने आप रागादिरूप नहीं परिणमता परन्तु रागादिरूप परद्रव्य के निमित्त से स्वयं रागादिरूप परिणमता है।**' आहाहा! इसमें भी शुद्ध स्वभाव से च्युत नहीं आया। '**परिणमन स्वभाव वाला होने पर भी अकेला अपने आप**...' यानि राग का निमित्त आत्मा नहीं है- ये बताना है। '**अकेला अपने आप रागादिरूप नहीं परिणमता।**' राग में निमित्त अन्य द्रव्य है।

'**रागादिरूप नहीं परिणमता परन्तु रागादिरूप परद्रव्य के निमित्त से (-अर्थात् स्वयं रागादिरूप परिणमन करनेवाले परद्रव्य के निमित्त से)**...' स्वयं वहाँ लागू पड़ता है, इधर नहीं। '**(स्वयं**

रागादिरूप परिणमन करनेवाले परद्रव्य के निमित्त से)...' राग का अनुभाग है न वहाँ? कर्म के अंदर। तो स्वयं परिणमता है वो। उसका निमित्त का लक्ष्य जाता है, तो उपादान का लक्ष्य छूट गया। अंदर देखना चाहिए ज्ञायक को, ज्ञायक को देखना भूल गया, स्वभाव से च्युत हो गया। स्वभाव से च्युत हुआ, अपना लक्ष्य छूटा, तो पर का लक्ष्य आये बिना रहता नहीं है। पर का लक्ष्य हुआ, तो राग हुआ- ऐसा नहीं है। अपना लक्ष्य छूटा तो राग हुआ- वो नियमरूप कारण है। वो निमित्त कारण है।

फिर से। फिर से। जब राग उत्पन्न होता है, तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि राग में निमित्त परद्रव्य है, उसका अनुभाग। समझे? तो वो जो राग की उत्पत्ति होती है, वो परद्रव्य का लक्ष्य किया तो राग की उत्पत्ति होती है - ऐसा भी नहीं। मगर अपनी आत्मा को नहीं जाना, (आत्मा को) भूल गया - वो राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण है। तो राग उत्पन्न हुआ अपने उपादान से, क्षणिक पर्याय से। क्षणिक पर्याय से राग उत्पन्न हुआ। राग उत्पत्ति होने का कारण क्या? कि अकर्ता को कर्ता माना, तो कर्ताबुद्धि आई, अहम् आ गया, तो विकार हो गया उत्पन्न। तो विकार में निमित्त परद्रव्य होता है, स्वद्रव्य निमित्त होता नहीं है। शुद्धात्मा निमित्त नहीं। शुद्धात्मा अकर्ता है। इसलिए निमित्त नहीं है। वो निमित्त भी अकर्ता है, वो कारण नहीं है। मगर मूल कारण स्वभाव से च्युत होना। अपने को भूल के आप हैरान हो गया। आहाहा! अपने को भूल जाना वो अज्ञान है। अपने को भूल जाना वो अज्ञान है। आहाहा!

एक बार ऐसा हुआ, मेरा मित्र है राजकोट में उसने कहा कुछ तत्व की बात करो, करूंगा ऐसा कहा, उसमें प्रेमचंद जी आया दिल्ली से आया। बार-बार आते थे। वर्ष में दो तीन बार आते थे। तो चाय पीने को गया फजल में उसके साथ, तो मेरे मित्र के वहाँ। तो मेरा मित्र है उसको मैंने कहा कि साहब आज तो ये प्रेमचंद जी आया। प्रेमचंद जी दिल्ली से मेरे घर। तो उसने मेरे को ऐसा कहा कि भाईसाहब मैं दिल्ली से आया हूँ और मेरा नाम प्रेमचंद जी है। मैंने कहा कि मगज फिर गया है उसका। वो तो बार बार आता है। मैं जानता हूँ उसको तो। कि कहने की जरूरत क्या पड़ी है तेरे को? समझे? ऐसे, ऐसे आत्मा शुद्ध ही है। मैं शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ कहने की जरूरत क्या है? आहाहा! मेरे को शंका हो गई। प्रेमचंद जी को शंका हो गई कि - साहब! मैं दिल्ली से आया हूँ, मेरा नाम प्रेमचंदजी। अपने आप में शंका हो गई तो बोला। नहीं तो बोलने की जरूरत नहीं है। आहाहा!

आखिर का टाइम ये आखिर की बात है। आखिर का ये लेसन- पाठ है। 'मैं ज्ञायक हूँ' बोलने की जरूरत क्या है तेरे को? शंका है तेरे को! दूसरे को समझाने के लिए ज्ञानी कहते हैं। वो 'ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ' रटन नहीं करता है। अनुभव कर लेता है, अनुभव कर लेता है। ऐसे भगवान आत्मा अपने स्वभाव को भूलता है, तो राग उत्पन्न होता है। और राग उत्पन्न होता है, तो परद्रव्य को निमित्त कहा जाता है। ठीक है? '**रागादिरूप परिणमता है। ऐसा वस्तु का ही स्वभाव है। उसमें अन्य किसी तर्क को अवकाश नहीं है।**' पर्याय स्वभाव से राग उत्पन्न होता है। पर से राग उत्पन्न नहीं होता है, स्व से भी राग उत्पन्न नहीं होता है। पाप का और पुण्य का परिणाम स्व से भी नहीं और पर से भी नहीं। भगवान की भक्ति का राग आया शुभभाव, दर्शन- पूजा करने का। किसने किया? शुभभाव किसने किया बताओ तो सही? कार्य तो है, कार्य तो है, कार्य तो हो गया। कार्य तो शुभभाव तो है न, तो उसका कोई कर्ता होने चाहिए, कौन कर्ता है बताओ? कर्ता कौन है उसका? आत्मा है कि निमित्त है कि कौन कर्ता है? कौन

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

अकर्ता है? अकर्ता कौन है बताओ? एक है कि दो? (मुमुक्षुः दो) कौन कौन? एक निमित्त अकर्ता है और त्रिकाली उपादान भी अकर्ता है। और आत्मा अकर्ता रहे और शुभभाव उत्पन्न हो, ऐसा बन सकता है?

मुमुक्षुः- नहीं बनता है। आत्मा भी अकर्ता, देव-गुरु-शास्त्र भी अकर्ता।

उत्तरः- आत्मा अकर्ता रहता है और राग की उत्पत्ति होती नहीं, क्योंकि आत्मा राग का करने वाला नहीं है। इसलिए उसकी उत्पत्ति हो तो कर्ताबुद्धि हो जाये, ऐसा है नहीं। राग की उत्पत्ति होती है, मगर अकर्ता रहता है आत्मा। (राग की उत्पत्ति) कर्ताबुद्धि का कारण नहीं है। और कर्म का उदय आया, तो राग हुआ, ऐसा भी नहीं है। जड़ कर्म से राग की उत्पत्ति नहीं होती है और भगवान आत्मा भी उसका उत्पादक नहीं है। वो कार्य का कर्ता, परिणाम का कर्ता परिणाम है। इसमें लिखा है, भजन में लिखाया था, भूल गया है, पढ़ लेना। आहाहा! (मुमुक्षुः- तत्समय की योग्यता) हाँ! तत्समय की योग्यता। अपने भीतर में कर्ताबुद्धि पड़ी है अनंतकाल से। कर्ताबुद्धि का शल्य निकलना साधारण नहीं है। आहाहा! असाधारण है। उसके लिये बहुत पुरुषार्थ चाहिए।

'**रागादिरूप परिणमता है। ऐसा वस्तु का ही स्वभाव है।**' लास्ट में तो मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प छूट जाता है नय पक्ष का, पक्षातिक्रांत होता है न, तब मैं ज्ञायक हूँ, मैं चिदानंद हूँ, मैं चिदानंद हूँ- ऐसा नहीं है। आहाहा! 'मैं अचलजी हूँ,' 'मैं अचलजी हूँ,' 'मैं अचलजी हूँ,' निकले बाजार में, भिण्ड के बाजार में। मैं अचल जी, मैं अचल जी। क्या हो गया अचलजी को आज? थोड़ा दो आने चार आने फेरफार लगता है। है कि नहीं? फिर? ये सबके लिए है। दृष्टांत है भाई साहब का। ये तो जहाँ तक ज्ञायक तक नहीं पहुँचता है तहाँ तक ज्ञायक का स्मरण करता है आत्मा। जब ज्ञायक तक पहुंच जाता है, तो 'मैं ज्ञायक हूँ'- ऐसा नयपक्ष का विकल्प नहीं रहता। अनुभूति होती है साक्षात्। अभी १७५ नंबर का श्लोक है। पढ़ो...

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव
वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत्॥१७५॥

'**श्लोकार्थः- सूर्यकान्त मणि की भाँति**, अर्थात् **जैसे सूर्यकांत मणि स्वतः से ही अग्नि रूप**,... उष्णरूप में, **परिणमित नहीं होता**,...' आहाहा! सूर्यकान्त मणि होता है, जंगल में। जब सूर्य का उदय होता है, उसकी किरण पड़ती है, तब उसके अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। सूर्य का उदय न हो तहाँ तक वो ठंडा का ठंडा ही रहता है। वो(सूर्य) निमित्त कारण है, वो (योग्यता) उसका उपादान कारण है। '**सूर्यकान्त मणि की भाँति अर्थात् जैसे सूर्यकान्त मणि स्वतः से**,...' अपने आप, अपने आप '**अग्निरूप परिणमित नहीं होता**,...' यानि रात्रि हो तो अग्निरूप होता नहीं है। उसकी योग्यता नहीं और अनुकूल निमित्त का अभाव। योग्यता का अभाव- तत्समय की पर्याय की योग्यता का अभाव और अनुकूल निमित्त का भी अभाव। निमित्त का अर्थ है अकर्ता।

सूर्य अकर्ता है, उष्ण में सूर्य कर्ता नहीं है। अत्यंत अभाव है। निमित्त का तो अत्यंत अभाव है। जिसका जिसमें अत्यंत अभाव है, वो कर्ता कहाँ से बने? '**सूर्यकान्त मणि की भाँति**...' जिसमें जिसका

अभाव है, अत्यंत अभाव, वो उसका कर्ता कहाँ से बने? आहाहा! निमित्त कर्ता कहा जाता है, इस का मतलब अकर्ता। उसका भावार्थ है अकर्ता। निमित्त कर्ता इसका अर्थ अकर्ता। निमित्त उसका कर्ता नहीं है। अकर्ता स्वयं परिणमता है पदार्थ, फिर क्या? निरपेक्ष है वो तो। अहाहा! तुम्हारी माताजी हाँ बोलती हैं। हाँ ही आवे अंदर में से, ऐसा जिनागम है। अहाहा! चमत्कारिक शास्त्र है।

किसी को टाईम ही नहीं है, पैसा कमाने के पीछे ही पड़ गया। पैसा साथ में आवे नहीं। पैसा रजकण भी साथ में आवे नहीं और चौबीस घंटा आहाहा! पैसा, पैसा, पैसा, पैसा। चौबीस घंटा उसके पीछे चला जावे। आहाहा! आधा घंटा, घंटा दो घंटा स्वाध्याय का, चिंतवन का, सत्समागम का टाइम मिले नहीं। ऐसे ऐसे जिंदगी पूरी हो जाये। और तिर्यंच में चला जाता है। ज्यादा करके, ज्यादा करके व्यापारी लोग माया कपट, तीव्र लोभ ज्यादा करके, सब नहीं। आहाहा! सरल परिणामी हो तो मनुष्य होता है। ज्यादा देव गुरु शास्त्र की भक्ति हो, तो स्वर्ग में भी दुःखी होने के लिये जाता है। दुःखी होने के लिये जाता है। स्वर्ग में कहाँ सुख है? स्वर्ग में सुख है? कि आत्मा में सुख है? स्वर्ग की बात, हाँ! स्वर्ग ठीक। स्वर्ग में दुःख भोगने के लिये जाता है। तो स्वर्ग नहीं चाहिए तो आत्मा चाहिए। हाँ! तो आत्मा चाहिए।

'**अग्निरूप परिणमित नहीं होता**,...' अपने आप सूर्यकांत मणि अग्निरूप- उष्णरूप से परिणमता नहीं है। '**उसके अग्निरूप परिणमन में सूर्य बिम्ब निमित्त है**,...' आहाहा! उसकी योग्यता, उष्ण पर्याय की योग्यता और सूर्य उसको निमित्त है। सूर्य निमित्त है, वो नैमित्तिक है। उष्णता नैमित्तिक है। उष्णता का कारण वो सूर्यकांत मणि नहीं। और वो (सूर्य) निमित्त कारण। तो उपादान कारण कौन? बताओ। सूर्य तो निमित्त कारण कहा न, तो उसका उपादान कारण कौन उष्णता का? कि पर्याय का कारण क्षणिक उपादान। त्रिकाली उपादान भी अकर्ता, निमित्त भी अकर्ता। कर्ता कहा जाता है। कथन मात्र है। कथन भी मिथ्या है। इस कथन को सत्यार्थ माने तो दृष्टि विपरीत हो जाती है।

'**सूर्य बिम्ब निमित्त है, उसीप्रकार आत्मा अपने को रागादि का निमित्त कभी भी नहीं होता**, ...' आहाहा! आत्मा रागरूप से परिणमता है तो भी राग के कारणरूप से कभी नहीं परिणमता है। किसी भी काल में। क्या कहा? आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर मिथ्यात्वरूप से परिणमता है, पर्याय अपेक्षा से। तो भी मिथ्यात्व के कारणरूप से आत्मा नहीं है, कभी भी नहीं होता है। कभी नहीं। किसी भी काल में। परिणमता है राग-द्वेष रूप से। **तो भी उसका कारण आत्मा नहीं है। और उसका कारण दर्शन-मोह भी नहीं है।** (मुमुक्षुः- (यदि दर्शन मोह कारण हो तो) पराधीनता का प्रसंग आ जाएगा।) आहाहा! अजब गजब की बात है।

टाइम थोड़ा निकालकर, टाइम निकालकर शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए। भाईसाहब! वो घी के व्यापार में कभी टोटा (नुक्सान) भी नहीं आवे। स्वाध्याय करो न, तो व्यापार में नुक्सान क्या? बहुत पैसा आएगा। लालच नहीं देता हूँ मैं! (मुमुक्षुः टोटा आया ही नहीं है। जब से तत्व सुना है, तब से टोटा आया ही नहीं।) आवे ही नहीं। इसमें टाइम लगाओ तो कोई नुकसान हो जाये अपने धंधे में, ऐसा होता नहीं है। साहब! ऐसा है। बराबर है। थोड़ा समय ज़्यादा निकालना। प्रोफेसर साहब! नीलम के पिताजी आये हैं न। एक संध्या के पिताजी और एक नीलम के पिताजी।

'**आत्मा अपने को रागादि का निमित्त कभी भी नहीं होता**,...' आहाहा! किसी भी काल में।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

रागरूप से परिणमता है तो भी राग का कारण आत्मा नहीं है। राग का कारण आत्मा नहीं है और कर्म का उदय भी कारण नहीं है। कर्म का उदय तो निमित्त मात्र है। निमित्त कारण है। सच्चा कारण वो नहीं है। आत्मा, भगवान आत्मा भी अशुद्धता का कारण नहीं है। आत्मा तो शुद्ध है। शुद्ध, अशुद्ध का कारण होता है? और परद्रव्य जो भिन्न है, अत्यंत भिन्न वो कारण बनता है इधर आकर? अपने क्षेत्र में आता है कर्म? (नहीं।) आहाहा! तो राग की उत्पत्ति का कारण क्या है? कि स्वभाव से च्युत होना। स्वयं अपने को जानने का भूल गया। जाननहार जानने में आने पर भी मेरे को जानने में आता नहीं है। वो राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण है। लिख लेना, कभी भूलना नहीं।

मुमुक्षु : निमित्तरूप कारण कौन है?

उत्तर : निमित्त कारण दर्शन मोह है। भिन्न द्रव्य है न। तो भिन्न जो द्रव्य है, वो निमित्त कारण यानि अकिंचित्कर। कारण कहा जाता है, मगर कारण है नहीं। कारणपने का उपचार आता है, सचमुच वो कारण नहीं है। भगवान आत्मा तो निमित्त कारण भी नहीं है। कर्म पर तो निमित्त कारण का आरोप आता है।

फिर से। क्या कहा? फिर से। सूक्ष्म बात है। वो सिद्ध करना है - आत्मा राग का निमित्त नहीं है। वो बात सिद्ध करना है। समझ गए? राग की उत्पत्ति हुई, उसमें भगवान आत्मा निमित्त कारण नहीं है। क्यों निमित्त कारण नहीं है? क्योंकि राग आत्मा के आश्रय से होता नहीं है, एक बात। और राग आत्मा को प्रसिद्ध करता नहीं है, दो। और राग आत्मा में अभेद होता नहीं है, तीन है। तो आत्मा राग की उत्पत्ति का उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण भी नहीं। तो राग की उत्पत्ति का उपादान कारण कौन और निमित्त कारण कौन? कि राग की उत्पत्ति का उपादान कारण पर्याय। और ऐसे राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण कौन? कि अपने स्वभाव से च्युत होना। राग मेरा है- वो राग की उत्पत्ति का कारण है। राग मेरा है- वो राग की उत्पत्ति का कारण है। 'मैं भगवान आत्मा हूँ'- तो राग की उत्पत्ति होगी नहीं। तो निमित्त कारण कोई होता नहीं है। उत्पन्न हो तो निमित्त कारण हो। उत्पन्न ही न हो। अद्भुत बात है।

आत्मा निमित्त नहीं है राग के अंदर। तीन कारण कहा न। फिर से। राग उत्पन्न होता है। तो राग उत्पन्न होता है, तो आत्मा के लक्ष्य से, आत्मा के आश्रय से होता नहीं है, एक। और राग आत्मा का लक्षण नहीं है, तो राग आत्मा को प्रसिद्ध करता नहीं है। और राग जाति जुदी है, तो आत्मा से अभेद होता नहीं है। इसलिए राग आत्मा से सर्वथा भिन्न है। कथंचित् भिन्न-अभिन्न नहीं, सर्वथा भिन्न है। और राग की उत्पत्ति होती है, तो भी आत्मा निमित्त कारण नहीं है। तो निमित्त कारण कौन? कि कर्म का उदय निमित्त कारण। तो उपादान कारण कौन? कि पर्याय का कारण पर्याय। वो पर्याय (में) राग की उत्पत्ति का कारण कौन? कि अपने स्वभाव को भूल जाना, ज्ञाता को कर्ता मानना, आहाहा! राग मेरा है- ऐसा मानना वो मिथ्यात्व की उत्पत्ति का कारण है। देह मेरा है- ऐसा मानना, पुत्र-पुत्री मेरा है, लक्ष्मी आदि मेरी है, मेरा मानना वो राग की उत्पत्ति- मिथ्यात्व की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा!

'**निमित्त कभी भी नहीं होता, [आत्मा आत्मनः रागादिनिमित्तभावम् जातु न याति]**...' कोई भी काल में आत्मा राग का, मिथ्यात्व का निमित्त कारण बनता नहीं है। उपादान कारण तो नहीं, निमित्त कारण भी नहीं है। आहाहा! अद्भुत बात है। ये कलश ऊंचा है। कलश टीका में बहुत उसका खुलासा

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

किया है। कि राग की उत्पत्ति का उपादान कारण कौन? कि अन्तर्गर्भित पर्यायरूप परिणमन शक्ति उपादान कारण। निमित्त कारण कौन? कि दर्शन मोह और चारित्र मोह का उदय।

'**कभी भी नहीं होता**,...' यानि आत्मा, राग उत्पन्न होता है, आत्मा उसका कारण नहीं है। आत्मा के कारण से नहीं होता है। आत्मा के कारण से राग हो तो सिद्ध परमात्मा तो है आत्मा। तो राग की उत्पत्ति होती नहीं है। आत्मा का होना राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। कर्म का उदय होना राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। अपने स्वभाव को भूल जाना राग की उत्पत्ति का कारण है। एक ही कारण है। अद्‌भुत शास्त्र है।

दो कारण की बात है। राग की उत्पत्ति ही नहीं हो। राग की उत्पत्ति का कारण जहाँ तक है, 'राग का कर्ता मैं हूँ' (ऐसा मानता है), तहाँ तक राग उत्पन्न होता है। 'राग का कर्ता मैं हूँ', तहाँ तक मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। आहाहा! राग का कर्ता भी नहीं और राग का ज्ञाता भी नहीं। मैं अकर्ता, ऐसा ज्ञायक का ज्ञाता हूँ। आहाहा! तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती नहीं है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है। सुख का मार्ग।

'**कभी भी नहीं होता**,...' बोलो! कोई एक समय ऐसा नहीं आता कि मिथ्यात्व और कषाय, योग, आस्रव का कारण आत्मा बन जाये। आहाहा! निमित्त कारण भी नहीं बनता है। उपादान कारण तो बने ही नहीं। उपादान कारण बने तो तद्रूपो न भवति। वो उसरूप हो जाये, रागरूपे हो जाय ऐसा तो कभी बनता नहीं है। उपादान कारण तो नहीं, निमित्त कारण भी नहीं है। आहाहा! अद्‌भुत बात है। निमित्त का निषेध किया, राग का निमित्त कारण आत्मा नहीं है। निमित्त का निषेध करता है।

'**उसमें निमित्त परसंग ही है**।' परद्रव्य नहीं। परद्रव्य का जब संग करता है। परद्रव्य का संग कब करता है? इधर से छूट जाता है, वहाँ जुड़ता है तब। इधर से अभेद में पर्याय को वहाँ से खींचता है। पर्याय को वहाँ से खींचकर आत्मा से जुदा करता है। जैसे माता के पास से कोई बालक को खेंच लेवे, तो माता भी रोये और बालक भी रोये। आहाहा! मेरे बालक को ले गया, मेरे बालक को ले गया। ऐसे भगवान आत्मा ज्ञानमयी है, उपयोग में आत्मा अनन्य है। अनन्य होने पर भी, वो उपयोग वहाँ से हटकर अभेद में भेद कल्पना करके पर का लक्ष्य करता है। परसंग एव। पर का संग करे तब निमित्त कहलाता है। पर का संग न करे तो निर्जरा हो जाती है। कुशील का संग न करे, कर्म कुशील है। उसका संग न करे, तो निर्जरा होती है।

और संग करे तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! निर्जरा में सुख है, राग में दुःख है। आहाहा! तेरे हाथ की बात है। इधर देखना कि वहाँ देखना। आहाहा! तेरे हाथ की बात है। स्वतंत्र है। '**उसमें निमित्त परसंग ही है**।' परसंग एव। ही है न। परपदार्थ का अस्तित्व राग का निमित्त नहीं बनता है। ये रुमाल है न, वो राग का निमित्त नहीं बनता है। मगर राग का निमित्त कब कहा जाये? कि ये मेरा है, तो निमित्त बन गया। पदार्थ की हाजरी राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। पदार्थ में ममत्व करता है, तो उसका नाम निमित्त पड़ता है। आहाहा! इसको(रुमाल को) तो सब देखते हैं, सबको राग होना चाहिए। यदि पदार्थ का अस्तित्व होने से राग होता है, तो सब को राग होना चाहिए। परपदार्थ राग का कारण नहीं है। परपदार्थ का संग, यानि इसमें असंगी में से छूट गया, पर्याय का असंगी से साथ छूट गया, तो पर के साथ जुड़

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

गया, तो राग की उत्पत्ति का कारण ऐसा निमित्त कहा जाता है।

'**निमित्त परसंग ही है। ऐसा वस्तुस्वभाव प्रकाशमान है। (सदा वस्तु का ऐसा ही स्वभाव है, इसे किसी ने बनाया नहीं है।)**' (मुमुक्षुः आज तो सब सार आ गया। पर्याय द्रव्य में जो अखण्डपने बैठी हुई है उसको खेंचता है।) हाँ, खेंचता है। रूचि...कर्ताबुद्धिवाले को पर्याय वहाँ से छूट जाती है। समय समय छूटती है। ऐसा नहीं, छूटी है और छूटती है (ऐसा) नहीं, छोड़ देता है। बलात्कार करता है। ज्ञान को ज्ञायक के साथ तन्मय होने पर भी वहाँ से खींचता है, ज्ञान की पर्याय को खींचता है। आहाहा! अभेद में से भेद कर देता है। भेद किया, तो पर के साथ अभेद की बुद्धि हो जाती है। अभेद होता नहीं है, अभेद की बुद्धि हो जाती है। बुद्धि बिगड़ जाती है। अभेद ज्ञेय ही है। मगर उसकी बुद्धि बिगड़ गयी। तो ज्ञान का अज्ञान हो गया न। ज्ञान का अज्ञान हो गया। तो अज्ञान में अभेद कहाँ होता है? अज्ञान अभेद नहीं होता है। आहा! ज्ञान अभेद रहता है। और अभेद की दृष्टिवाले को वहाँ से छूटता ही नहीं है। जहां तक केवलज्ञान न हो, तहाँ तक मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ, ऐसा रखने से अपने को लाभ होता है।

ॐ

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com